Sashtang Pranam

For keeping the human body healthy and to achieve God realisation, the realised souls (Guru's) have been advocating the practices of yagna, tapasya, obalations, pranayama, dharna, dyan etc. depending upon the calibre of each disciple.

Keeping the current times in mind Shri Thakur Ji has given the Mimansa and conclusion that the same can be achieved by Sahstang Pranam.

How Thakur Ji as Guru will be giving this Mimansa was forecasted by Mahapurush Achytananda, a 15th Century seer in 6th Chapter of his "Future scripture – Mahavivek Granth"

साष्टाङ्ग प्रणाम

ठाकुर जी की अवतारणा व लीलाधारा के सम्बन्ध में पंचदश शताब्दी के पंचसखाओं में अन्यतम **महापुरुष अच्युतानन्दजी स्वकृत "भविष्य ग्रन्थ - महाविवेक ग्रन्थ"** के छः खण्ड में आज से पाँच सौ से भी अधिक वर्ष पूर्व स्पष्ट लिपिबद्ध कर गए हैं :-

कोष पहचाने मन्त्र देंगे गुरुरूप में विदित ।
स्नायु देख प्रणाम को करते रहना मजबूत ॥

अष्ट अंग लगाकर तुम प्रणाम करना ।
सहज सूतर नाम कलि से तरना ॥

साष्टाङ्ग प्रणाम के नियमित अभ्यास से शरीर के अष्ट अंगों में दबाव पड़कर जिस प्रकार रोगों का निराकरण होता है, उसी प्रकार कोषों की साधना सहित शरीर की साधना भी हुई होती है।

साष्टाङ्ग प्रणाम का माहात्म्य

"साष्टाङ्ग प्रणाम सूत्र साधन।
होगा रे चेतन आएगा ज्ञान ॥"

अर्थात्, मनुष्य के शरीर में गुप्त में रहा दिव्य चैतन्य व बोधज्ञान साष्टाङ्ग प्रणाम के अभ्यास व साधना द्वारा जाग्रत हो जाएगा।

“चैतन्य चेतना के द्वार पर प्रकट ।
जागती कुण्डलिनी होती है सभा समाप्त ॥”

किसी घटना के घटित हो जाने के पश्चात् उस घटना का फलाफल हमारी चेतना में आता है। यथा समय पर हमारा चैतन्य जाग्रत नहीं हो पाता। घटना घटने से पहले यदि कारण उपस्थित होता है, तब अज्ञान वश कारण के साथ संपृक्त होकर हम कारण बन जाया करते हैं। परन्तु विधिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम के अभ्यास व साधना द्वारा, शुभाशुभ का कारण जब हमारे निकट उपस्थित होगा, तब कारण सहित बिना संपृक्त हुए कारण का ज्ञान व चेतना पाकर हम उससे सावधान होकर स्थिर रह सकते हैं। तत् सहित मनुष्य के भीतर सुप्तावस्था में रही कुण्डलिनी साष्टाङ्ग प्रणाम के प्राणायाम सूत्र की साधना द्वारा जाग्रत होकर शुद्ध दिव्य चैतन्य व बोधज्ञान उपलब्ध कराती है, जिससे मनुष्य शरीर में पचीस प्रकृति की विकारमय सभा अथवा गति को नियन्त्रित करते हुए षड्रिपुओं व अरियों को अपने वशीभूत करके रखता है।

“अष्टाङ्ग योग साष्टाङ्ग में साधे।
अष्ट प्रकृति का भाव समाधि ॥”

दिव्यज्ञान पर आधारित नरशरीर प्रकृतियों के द्वारा विषय रूपी प्रसाद ग्रहण कर तन्मध्य से उत्पन्न हो रहे सुख-दुःख रूपी महा अनित्य फल सर्वदा भोग करता है। इस भोग का कोई विराम नहीं। यह अनवरत चलता रहता है। इसकी समाप्ति नहीं होती। अतः प्रत्येक नरशरीर विषयों को ग्रहण करने के लिए विवश है। कारण स्वरूप सुख- दुःख के वशवर्ती होकर भोग के अनुकूल में स्नेह, श्रद्धा, ममता, प्रीति और प्रतिकूल में क्रोध, ईर्ष्या, हिंसा, निष्ठुरता से आच्छादित होकर विकारग्रस्त हो रहा है। स्रष्टा नरशरीर की सृष्टि करते समय जानते थे कि, यह नरशरीर दिव्यज्ञान धारण करने के कारण ज्ञान के प्रभाव से विकारग्रस्त होकर विकृत हो जाएगा। अतः इस विकार को निष्कासित करने के लिए स्रष्टा ने शरीर मध्ये निष्कासन का द्वार रखा है। यह निष्कासन द्वार विकार समूह को सदा सर्वदा महाशून्य की ओर निष्कासित कर रहा है।

ये विकार समूह अपने प्रभाव से इन निष्कासन द्वारों का अवरोध करते हैं। जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलित होने से धुआँ निकलता है और इस धुएँ को धुआँदान (चिमनी) द्वारा बाहर निकाल कर चूल्हे को धुएँ से मुक्त किया जाता है। क्रम में धुएँ के प्रभाव से कालिख उत्पन्न होकर धुआँदान का द्वार अवरोध हो जाता है। फलतः चूल्हा धूम्राच्छन्न होकर प्रज्वलित अग्नि को ईंधन से विलग कर देता है। उसी प्रकार विकारों को निष्कासित करने के लिए इस नरशरीर में स्रष्टा ने भले ही कई द्वार रखे हैं, तथापि विकारों से प्रभावित होकर ये द्वार कलंकित हो जाते हैं। फलस्वरूप नरशरीर में रहा गुप्त दिव्यज्ञान कार्यकारी नहीं हो पाता। फलस्वरूप मनुष्य विपर्यस्त होकर नरक यन्त्रणाएँ भोग करता है।

यदि किसी भी उपाय से शरीर के निष्कासन द्वार में विकारों के प्रभाव से जम रहे कलंक को साफ किया जा सकता, तब दिव्यज्ञान का चैतन्य सर्वदा जाग्रतावस्था में ज्वलन्त रहता एवं मनुष्य अपने जन्म का मूल्यबोध हृदयंगम करने में योग्य हो पाता।

स्रष्टा के द्वारा प्रेरित ज्ञानी पुत्र धराधाम पर आकर गवेषणा करते हुए मनुष्य की इन्हीं समस्याओं के समाधान का उपाय दे गए हैं। वह उपाय है "अष्टाङ्ग योग"। इसी अष्टाङ्ग योग की प्रतिदिन कर्मयोग द्वारा अभ्यस्त सूत्र से साधना करने पर शरीर से निर्गत समस्त विकारमय मैल स्वतः धुल जाता है। इस अष्टाङ्ग योग की साधना के लिए वर्तमान समयोपयोगी साधना "साष्टाङ्ग प्रणाम" है। स + अष्ट अंगों से प्रणाम अर्थात् शरीर के अष्ट अंग **(दोनों घुटने, दोनों कुहनियाँ, दोनों करतल (हथेलियाँ), मस्तक सहित नासिका तथा वाम पैर के अँगूठे का अग्रभाग)** भूमि को स्पर्श करते हुए प्रणाम करने से अष्ट प्रकृतियों (पंचज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार) के कोष केन्द्रिकाओं पर दबाव पड़ता है। फलस्वरूप शरीर से विकार निष्कासित होते हैं॥

अष्टधा प्रकृति ने शरीर में मुख्यतः आठ कोष केन्द्रिकाएँ सृष्टि कर तन्मध्ये आणविक शक्ति संपन्न संस्कार समूह गच्छित करके रखा है। कोई भी प्रकृति भक्षित विषय शरीर के निकट उपस्थित होते ही कोष केन्द्रिकाओं में गच्छित तज्जनित संस्कार समूह विषय के प्रभाव से विकसित होकर निजस्व आणविक शक्ति की सहायता से स्नायवीय प्रवाह सृष्टि कर शरीर में नाना प्रकार के कंपन उत्पन्न करते हैं। अतएव विषय के आकर्षण से शरीर कंपित होकर विषय सहित एकाकार हो जाता है। कुछ समय अतिवाहित हो जाने के पश्चात् संस्कार समूह निजस्व शक्ति गँवाकर दुर्बल हो जाने के कारण विषय का त्याग करते हुए कोष केन्द्रिकाओं में प्रत्यावर्तन कर गुप्त में रह जाते हैं। पुनः शक्ति संग्रह करते हुए कोष केन्द्रिकाओं में स्थित संस्कार समूह सक्रिय होकर सामने विषय उपस्थित होते ही उसके साथ संपृक्त हो जाते हैं। यह क्रिया सर्वदा नर शरीर में क्रियाशील होकर जीव को सुख-दुःख से उत्पन्न विकारों में विकारग्रस्त करा कर नरक यन्त्रणाएँ भोग कराती है।

ऊपरलिखित आठ अंग ही अष्टधा प्रकृति के कोष केन्द्रिकाएँ हैं। यहीं से असंख्य अन्तर्वाही व बहिर्वाही स्नायु निकल कर सर्वांग में जाले की भाँति फैली हुई हैं। उदाहरणतः - भय जात होते ही सर्वांग में रोंगटे खड़े होने लगते हैं। इस क्रिया को स्नायु विन्यास की सहायता से शरीर में अनुमान किया जाता है। कोष और स्नायु समूह का जड़ ही मुख्य विषय है। यदि मूल से जड़ को अलग कर दिया जाता है, तब मूल में जल को आकर्षित करने की शक्ति होते हुए भी जड़ छिन्न होने के कारण रस का शोषण नहीं कर पाती। उसी प्रकार कोष केन्द्रिकाओं में दबाव डालकर बहिर्वाही स्नायु समूह द्वारा कोष केन्द्रिकाओं में स्थित शक्तिशाली संस्कार समूह के उत्तेजित कंपन को महाशून्य की ओर प्रेरित किया जा सकता है।

साष्टाङ्ग प्रणाम द्वारा अष्ट अंग भूमि को स्पर्श करने द्वारा अंगों में जो दबाव पड़ता है, वह हमारे समस्त रोगों व व्याधियों का हरण करता है। इस प्रणाम के सूत्र ऐक्युप्रेशर चिकित्सा के साथ जड़ित हैं। ऐक्युप्रेशर चिकित्सा में प्रत्येक रोग के लिए हाथों और पैरों में प्रेशर दिए जाते हैं। शरीर के इन आठ अंगों में ऐक्युप्रेशर दिए जाने से कौन-कौन-से रोगों से मुक्ति मिलती है, आइए वह जानते हैं :-

ऐक्युप्रेशर चिकित्सकों के मुताबिक विभिन्न रोगों के लिए घुटनों में प्रेशर दिए जाते हैं। यथाक्रम में घुटनों में प्रेशर देने से शरीर में शक्तिवर्द्धक टानिक मिलता है। तत्सहित रोग प्रतिषेधक शक्ति बढ़ती है। उच्च व निम्न रक्तचाप, पोलियो, पैरों की दुर्बलता, घुटनों में पीड़ा, शिराओं में पीड़ा, पैरों में दर्द इत्यादि रोगों से उपशम व आरोग्य लाभ होता है।

"घुटनों पर बैठो जोड़ हस्त में।
मन्त्र पढ़ जाओ तीन धाप में ॥"

साष्टाङ्ग प्रणाम करते समय घुटनों पर बैठ कर हाथों से पदक्षेप लेते हुए मेरु दण्ड भूमि पर समानान्तर कर, नाभिचक्र से द्वादश(12) उँगली भूमि पर से उठा कर, मस्तक भूमि का स्पर्श करते हुए कुम्भक सूत्र में रहने से घुटनों पर प्रबल दबाव पड़ता है एवं दोनों हाथेलियों के हस्तक्षेप से 12 उँगली लंबी मुद्रा के साथ भूमि का स्पर्श करने से जांबील 4 उँगली आगे खिसक जाता है और जांबील पर दबाव पड़ता है। पुनश्च एक हाथ 12 उँगली पीछे खींचते हुए आकर घुटनों से एक हाथ की दूरता पर मस्तक भूमि पर लगाकर दूसरी बार प्रणाम करने से जांबील 4 उँगली पीछे खिसक आता है। इसी प्रकार प्रणाम के समय घुटने आगे-पीछे खिसक कर स्नायु कोष, अस्थि तथा चर्म पर दबाव पड़ता है। फलस्वरूप ऊपर लिखित सकल रोग नियन्त्रित होकर शरीर स्वस्थ रहता है।

"दोनों घुटने और कुहनियाँ दो।
दोनों हथेलियों पर भार लगाओ ॥"

पूर्व अनुच्छेद में दोनों घुटनों पर दबाव पड़ने से कौन-कौन से रोगों से मुक्ति मिलती है, वह हमने जाना। दोनों कुहनियों पर दबाव पड़ने से व्यथा, दमा, पक्षाघात इत्यादि रोगों का निराकरण होता है। दोनों हथेलियों पर दबाव पड़ने से हमारे शरीर को कौन-कौन से लाभ होते हैं, वह **चिकित्सकों के मुताबिक** वर्णन कर रहे हैं :-

शरीर में कोई भी रोग होने पर ऐक्युप्रेशर चिकित्सा में विशेषतः हथेलियों में प्रेशर दिए जाते हैं। चूँकि हमारी हथेलियों में शरीर के समस्त अंश अर्थात् पैरों की उँगलियों से आरम्भ कर मस्तक तक जितने अंश व विभाग हैं, उनकी समस्त स्नायु इन हथेलियों में रहकर शिराओं के साथ संयुक्त हुई हैं। इसलिए हथेलियों को शरीर का नियन्त्रण केन्द्र कहा जाता है। चूँकि स्नायु समूह हमारी हथेलियों में निर्दिष्ट स्थानों पर निर्दिष्ट ग्रन्थियों के साथ संयुक्त होकर स्थित हैं। अतः हथेलियों में सर्वांग शरीर के अंशों व विभागों की ग्रन्थियों को चिह्नित किया गया है। उनमें सबसे मुख्य गलग्रन्थि (Thyroid Gland) पर दबाव देने से शरीर की विभिन्न प्रकार के रोगों से रक्षा की जाती है। इसी कारण इस ग्रन्थि को शरीर की राजग्रन्थि भी कहा जाता है। शिशुओं की इस ग्रन्थि पर दबाव देने से शरीर के विकास में कैलशियम और फासफोरस उपलब्ध होता है एवं शरीर के जीवविष (Toxin) बाहर निकलने लगते हैं। तत्सहित अन्तःस्राव (Hormone) की शक्ति बढ़ती है। वयस्क व्यक्तियों के शरीर में कोई स्थान सख़्त अथवा नरम हो जाए तो, शरीर सूख जाए तो, अत्यधिक मोटा या पतला हो जाने से, गर्भाशय के विकास और सुरक्षा हेतु पाचन शक्ति बढ़ाने, किसी अंश में हड्डी बढ़ने न देने, प्रतिजोड़ न फूलने, शरीर में सिहरन न होने, आँखों की डेला न बढ़ने, गलगंड, अस्थि क्षेय, शरीर कांपने, असमय बाल न पकने, बाल न झड़ने, गंज न होने के लिए इस ग्रन्थि पर दबाव दिए जाते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि, साष्टाङ्ग प्रणाम द्वारा हथेलियों में समान प्रकार का दबाव पड़कर उपरोक्त रोगों से मुक्ति मिलती है।

साष्टाङ्ग प्रणाम के समय मुद्रा करते हुए प्रणाम करने से हथेलियों के अँगूठों पर दबाव पड़कर

मस्तिष्क रोग, सिर दर्द और वात रोग इत्यादि का निवारण होता है। हथेलियों के चतुष्पार्श्व में जोड़ हस्त की मुद्रा द्वारा ग्रन्थियों की मुख्य जगहों एवं नाड़ियों पर दबाव पड़कर कमर दर्द, घुटनों में पीड़ा, पेशाब जनित विभिन्न प्रकार के रोग, पथरी, कोष्ठ काठिन्य, पेट दर्द, अतिसार, ऐलर्जि, वमन, गुर्दे के विभिन्न रोग, पीलिया, शरीर के काले दाने, आँखों के नीचे काला पड़ना, उच्च व निम्न रक्तचाप, कंधे व छाती में पीड़ा, कर्ण रोग, चक्षु रोग, मलेरिया, काले ज्वर इत्यादि रोगों से आरोग्य लाभ होता है।

साष्टाङ्ग प्रणाम के सूत्रानुयायी जब भूमि पर हथेलियों की मुद्रा द्वारा पदक्षेप लेते हुए 2 हाथ 12 उँगली अतिक्रम करते हैं, तब हथेलियों की मुद्रा पर शरीर का भार (वज़न) पड़ने से हथेलियों की नाड़ियों के चतुष्पार्श्व में दबाव पड़कर कष्ट अनुभव होता है। कष्ट भले ही हो, शरीर की उपरोक्त रोगों से रक्षा होती है।

"मुद्रा में लगाओ नासिका मस्तक।
दोनों पैरों में से करो अलग एक ॥"

साष्टाङ्ग प्रणाम की मुद्रा में नासिका व मस्तक भूमि पर स्पर्श करने से मस्तक का वज़न नाक और कपाल पर पड़ता है। नाड़ी चिकित्सा के अनुसार नाक पर दबाव पड़ने से सर्दी जुकाम, सिर दर्द, साइनसाइटिस(Sinusitis) इत्यादि रोग ठीक् होते हैं एवं कपाल पर दबाव पड़ने से सर्दी जुकाम, सिर दर्द, सिर चकराना, मस्तिष्क रोग, अनिद्रा, चक्षु रोग, जिह्वा तथा आमाशय इत्यादि रोगों से मुक्ति मिलती है।

"दोनों पैरों में से करो अलग एक।" साष्टाङ्ग प्रणाम में पैर का समस्त वजन लेकर वाम पैर के अँगूठे द्वारा प्रणाम करने से अँगूठे के अग्रभाग पर दबाव पड़ता है एवं दाहिने पैर की उँगलियाँ वाम पैर की एड़ी पर रखने से जो दबाव पड़ता है, उसके फलस्वरूप वातरोग, पैर के जोड़ों में दर्द, साईऐटिकॅ, कमर में दर्द, यौन दुर्बलता, तलवों में दर्द, पक्षाघात, सिर दर्द, गले में दर्द, गरदन में विभिन्न प्रकार के दर्द, गलंकुर, खाँसी इत्यादि रोग ठीक होते हैं।

"मेरु दण्ड रखो सीधा करके।
कुण्डलिनी के द्वार वायु भरके ॥"

प्रणाम के समय कुम्भक सूत्र में मेरुदण्ड सीधा रखते हुए कुण्डलिनी में वायु का दबाव देने द्वारा सन्धिवात, गरदन में पीड़ा, कमर में दर्द, साईऐटिकॅ नहीं होता। वर्तमान युगोपयोगी साष्टाङ्ग प्रणाम द्वारा शरीर के आठ अंगों पर दबाव पड़कर सर्वरोग व व्याधि हरण होता है और कुण्डलिनी का प्रवाह ऊर्ध्वगामी होकर आत्मा की सद्‌गति होती है।

अष्टधा प्रकृति के द्वारा शरीर में विषयों का दहन होने के कारण शरीर विकार ग्रस्त होता है एवं इन विकारों से नाना प्रकार के रोग जात होने के साथ-साथ प्रकृतियों के भाव समूह विकृत होते हैं। विषयों के भक्षण से विकार, विकारों के प्रभाव से रोग, रोगों के प्रभाव से विकृति, विकृतियों के प्रभाव से विवेक ज्ञान का विनाश होकर मनुष्य में अशान्ति, अतृप्ति, अवसाद व असन्तोष जात होता है।

मानव जीवन में बहुमूल्य शान्ति व सन्तोष लाने के लिए अशान्ति उत्पन्न कर रहे विकारों से

जात रोगों व व्याधियों का साष्टाङ्ग प्रणाम के सूत्र द्वारा सर्वप्रथम विनाश करना आवश्यक है। रोगों व व्याधियों का विनाश होने से शरीर से स्वतः विकृत भावों का विनाश होता है। इसी सूत्र से अष्ट प्रकृति के विकृत भावों की समाधि होकर मानसस्तर, अन्तःकरण व चित्त शान्त होकर स्थिर होता है। एतद्द्वारा हृदय में विवेक ज्ञान का उदय होकर मनुष्य को दिव्यालोक में आलोकित कर चैतन्यता की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पवन के प्रभाव से जल तरंगायित होकर चन्द्र बिंब को दोलायमान करता है, उसी प्रकार मनुष्य की चैतन्यता को विषय विकार रूपी पवन शरीर में स्थित अन्तःकरण, मानस व चित्त को तरंगायित कर चैतन्यालोक को अस्थिर करता है। जिस प्रकार पवन स्थिर हो जाने से जल स्वतः स्थिर होकर चन्द्र बिंब को स्थिर रखता है, उसी प्रकार शरीर में स्थित अष्ट प्रकृति का विकृत भावतरंग साष्टाङ्ग प्रणाम के सूत्र द्वारा स्थिर व शान्त हो जाने से हृदय में चन्द्र की भाँति चैतन्य स्थिर भाव से प्रकाशित होता है। इसीलिए कथित है :-

"अष्टाङ्ग योग साष्टाङ्ग में साधे।
अष्ट प्रकृति की भाव समाधि ॥"
एवं

"चैतन्य चेतना के द्वार पर प्रकट ।
जागती कुण्डलिनी होती है सभा समाप्त ॥"

चैतन्य : जिनकी प्रतिभा के प्रकाश से सचराचर विश्वब्रह्माण्ड आलोकित होकर विकसित होते हैं, उनको यहाँ चैतन्य अथवा चैतन्य पुरुष कहा जा रहा है।

चैतन्य पुरुष की प्रतिभा जीव के भीतर प्रवेश कर चित्त ह्रद के एक केन्द्र को प्रतिफलित करती है। यहाँ चित्त ह्रद के उक्त केन्द्र को चेतना द्वार कहा जा रहा है। चैतन्य पुरुष की प्रतिभा इस चित्त ह्रद के जिस केन्द्र को प्रतिबिंबित करते हुए जीव के समस्त केन्द्रों को प्रतिभात करती है, उस केन्द्र बिन्दु को *त्रिकुट, त्रिवेणी अथवा जागतिक केन्द्र* भी कहा जाता है। यहाँ जीव अपने शरीर स्थित समस्त अंगों व अवयवों के विषयों को अनुभव कर अपनी अनुभूति में लाता है। अतः इसको अनुभूति केन्द्र भी कहा जाता है।

इस चेतना द्वार में चैतन्य पुरुष की प्रतिभा उदय होकर जीव को समस्त विषयों की चेतना उपलब्ध कराती है। परन्तु शरीर स्थित प्रकृतियों के विषयभोग के प्रभाव से चित्त ह्रद प्रभावित होकर तरंगायित होता है। अतः चैतन्य पुरुष की प्रतिभा भले ही चित्त में प्रतिफलित हो, तथापि चित्त के प्रभाव से वह तरंगायित होकर स्थिर चेतना प्राप्त नहीं हो पाता। अतः अखण्ड चैतन्य चित्त की विषय तरंगों में खण्ड-खण्ड विद्युत की झलकों की भाँति झलक उत्पन्न करता है। इस झलक के प्रभाव से आलोक होते हुए भी जीव को कुछ दिखाई नहीं देता। चैतन्य चित्त में प्रकाश होकर शरीर स्थित समस्त जागतिक केन्द्रों को भले ही चेतना उपलब्ध कराता हो, तथापि मूलकेन्द्र में चित्त की चंचलता होने के कारण समस्त जागतिक केन्द्र चेतना होते हुए भी अचेतन हो जाते हैं।

अतः मनुष्य के भीतर दिव्य चैतन्य होते हुए भी, चैतन्य के प्रभाव से प्रकृतियों के विषय समूह के साथ संयुक्त होने के कारण चित्त प्रभावित होकर तरंगायित होता है। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रालोक के प्रभाव से ज्वार उठ कर समुद्र को तरंगायित करती है, विषयों के प्रभाव से चित्त तरंगायित होकर पूर्ण चैतन्य की प्रतिभा रूपी आलोक होते हुए भी जीव अन्धकार में भटकता रहता है। किसी उपाय से यदि चित्तवृत्तियों की विषयाकार तरंगों को नियन्त्रित किया जा सकता, तब चित्त ह्रद स्वतः स्थिर हो जाएगा। चित्त स्थिर हो जाने से चैतन्य चेतना द्वार में स्वतः स्थिर होकर समस्त विषयों पर चैतन्य उदय होगा।

प्रश्न यह है कि, सकल चित्तवृत्तियों को नियन्त्रित करने के उपाय क्या हैं ? चैतन्य को चेतना के द्वार पर प्रकट कराना है तो "जागती कुण्डलिनी होती है सभा समाप्त", अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करा सकने से प्रकृतियों की विषयाकार सकल वृत्तियों को वह अपनी दिव्य शक्ति से निरोध करती है।

चैतन्य, चित्त में प्रतिबिंबित होकर जो केन्द्र उत्पन्न करता है, उस केन्द्र में स्थित चैतन्य के दो प्रकोष्ठ अथवा द्वार हैं। यथा :- (1) **युक्त त्रिवेणी** और (2) **वियुक्त त्रिवेणी अथवा कुण्डलिनी।**

युक्त त्रिवेणी : मनुष्य के जन्म होते ही यह जाग्रत व क्रियाशील होकर मनुष्य को भौतिक एवं जागतिक समस्त सुख-दुःख अनुभव कराते हुए उसकी अनुभूति में लाती है।

वियुक्त त्रिवेणी : मनुष्य के जन्म से मृत्यु पर्यन्त यह मुद्रितावस्था में शरीर में होते हुए भी बिना साधना के जाग्रत व विकसित नहीं हो पाती। वियुक्त त्रिवेणी के प्रकोष्ठ में भौतिक जगत् के समस्त जागतिक सुखों व दुःखों की विपरीत शान्ति व सन्तोष रूपी महाकैवल्य हैं। उक्त महाकैवल्य के प्राप्त होने से मनुष्य भौतिक जगत् के समस्त जागतिक सुखों व दुःखों को भूला कर नित्य-शाश्वत-सत्य-सनातन विभु के शान्ति व सन्तोष रूपी महाप्रसाद दान करता है।

वियुक्त त्रिवेणी को साधना के माध्यम से चैतन्य युक्त कराते हुए युक्त त्रिवेणी को वियुक्त कर सकने से मनुष्य को दिव्य चैतन्य, दिव्य शक्ति, दिव्य ज्ञान व महा कैवल्य प्राप्त होता है। तत्सहित जागतिक गृह में क्रियाशील रिपुओं के गुण युक्त प्रकृतियाँ व इन्द्रियाँ भौतिक विषयाकार वृत्तियों से निवृत्त होती हैं।

प्रश्न यह है कि, वियुक्त त्रिवेणी को युक्त करते हुए युक्त त्रिवेणी को वियुक्त किस प्रकार किया जाए ? इसके उपाय क्या हैं ??

हमारे सिद्ध साधकों एवं गुरुअंगों ने विभिन्न प्रकार के उपाय निकाले हैं और इन उपायों को सिद्धान्त भी किया है। उक्त महापुरुषगण पर्यायक्रम में अथवा युगानुवाद में याग, यज्ञ, तप, व्रत, उपासना, पूजा, प्राणायाम, ध्यान व धारणा इत्यादि के सूत्र दे गए हैं। अपने सामर्थ्य के बल पर सिद्ध गुरु से कोई भी सूत्र धरने से हम युक्त त्रिवेणी को वियुक्त कराते हुए कुण्डलिनी को जाग्रत कर सकते हैं।

वर्तमान युग के परिवेश व परिस्थिति एवं मनुष्य की प्राण शक्ति व सामर्थ्य को विचार में लेकर श्रीश्रीश्री गुरुस्वामीजी मीमांसा व निर्णय दे रहे हैं कि, साष्टाङ्ग प्रणाम सूत्र के माध्यम से युक्त त्रिवेणी को वियुक्त तथा वियुक्त त्रिवेणी को युक्त करते हुए कुण्डलिनी को जाग्रत कर सकते हैं। साष्टाङ्ग प्रणाम के

माध्यम से यह किस प्रकार से होता है ?

साष्टाङ्ग प्रणाम के सूत्र से,

"द्वादश उँगली भूमि से नाभि कर ।
प्राणायाम सूत्रे श्रीगुरु की चिन्ताकर ॥
ब्रह्मरन्ध्र में प्राण प्रवेश जाकर ।
चरम स्थान की ओर पथ खोलकर ॥"

इसी प्रकार आंगिक साधना सूत्र के कारण, साधना के समय मेरु दण्ड को भूमि पर समानान्तर भाव से सीधा रखते हुए प्राणायाम के कुम्भक सूत्र में भूमि से द्वादश उँगली नाभि को उठा कर रखने से मेरुदण्ड स्थित कुंचित सुषुम्ना नाड़ी में खिंचाव होकर वह सीधी हो जाती है एवं कुम्भक सूत्र में वायु का दबाव मेरुदण्ड स्थित आज्ञाचक्र व मूलाधार स्थित कुण्डलिनी पर पड़ता है। फलस्वरूप सीधी हुई सुषुम्ना नाड़ी में कुण्डलिनी की शक्ति प्रवाहित होकर प्राण को ब्रह्मरन्ध्र होते हुए सहस्रागार की ओर निक्षेप करता है, जिसको हम पिण्ड का चरमस्थान कहते हैं।

यह कुंचित सुषुम्ना क्या है ? मनुष्य का बिन्दु क्षय होने से सीधी सुषुम्ना नाड़ी कुंचित हो जाती है।

"युग की मीमांसा आया है पाद। साष्टाङ्ग में प्रणाम कर भक्ति मोद ॥"